

उनकी निर्भीकता, कर्मठता और स्वाजित-गरिमा वास्तव में ही प्रेरक और चमत्कृत कर देने वाली है ।

“साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो” में उनके विभिन्न लेखों का जो उपयोगी और जीवन्त संग्रह भाई श्री विपिन जारोनी ने किया है, उसमें मेरी एक कल्पना साकार हुई है जो कुछ वर्ष पहले मेरे मन में आई और मैंने आदरणीय श्री जैन के समक्ष स्पष्ट की थी । लेखों का यह बहुमूल्य संग्रह श्री जैन के मनरग का सम्पूर्ण छायाचित्र प्रस्तुत कर देता है । उनके सपनों को द्रव्यवी व्यक्त कर देता है । लेखों में विषय, देश, काल की विविधता होते हुए भी विचारों की एकलक्ष्यता और सत्य की स्पष्ट घोषणा उसे बिखरने नहीं देती है ।

नवयुवक विचारक जहाँ इन लेखों से प्रेरणा और मार्ग-दर्शन प्राप्त करेगा, वहाँ समाज की बुजुर्ग पीढ़ी मोचने-समझने के लिए एक नई खुराक प्राप्त करेगी । पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, यही मंगल कामना ।

आगरा

—श्रीचन्द सुराणा ‘सरस’

दिनांक ६/६/१९७६

लेखक एवं पत्रकार

[३]

प० श्री ‘उदय’ जैन के विभिन्न लेखों को सकलित करके ‘साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो’ पुस्तक रूप में श्री जैन शिक्षण सघ कानोड प्रकाशित कर रहा है, यह जानकर खुशी हुई । अपने इस लेख-संग्रह में श्री ‘उदय’ जैन, जैन समाज की एकता पर महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं ।

ऐसे अच्छे पुस्तक के प्रकाशन के लिये श्री जैन शिक्षण सघ कानोड की मैं सफलता चाहता हूँ और शुभेच्छायें प्रदान करता हूँ ।

युग बदल रहा है

क्या कहा ? युग बदल रहा है । युग तो प्रतिपन्न परिवर्तित होता आया है । एक समय जो नियन्त्रित माना जाता है । वह भी परिवर्तनशील है । आज है, वह कल नहीं रहेगा । कल था, वह आज नहीं है ।

वर्तमान युग के पुजारी वर्तमान की प्रशंसा करते हैं, पुराने मानव, पुरातन युग को याद करते हैं । युग एक नियन्त्रित काल का नाम है, जिसे विज्ञ पुरुषों ने हजारों वर्षों के दायरे में बाँधा है । कही १२ वर्ष का युग तो कही ५ वर्ष का युग माना जाता है । इसका सही नाप लेकर की लेखनी या वार्ता कर्त्ता की वार्ता पर निर्भर है ।

मैं युग को सौ वर्ष के दायरे में देखता हूँ । जिसे शताब्दी कहते हैं । अभी भारत के विक्रम संवत्सर की २१वीं शताब्दी चल रही है । इसी शताब्दी के आरम्भ से युग बदलना प्रारम्भ हो गया । आज २६ वर्ष में कलयुग-राकेट युग बन गया है । बृहस्पति की यात्रा चल रही है । चन्द्र यात्रा कई बार हो चुकी है । मंगल ग्रह की ओर बढ़ना प्रारम्भ हो गया है । जैसे चन्द्र तल पर मानव उतर चुके हैं, उसी तरह मंगल-ग्रह पर उतरने का प्रयास चालू है । शताब्दी के तीस वर्ष पूरे होते-होते मानव, मानवता के लिए भी आगे बढ़ेगा । इसी युग में राष्ट्र

मस्तिष्क धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। अन्ध श्रद्धा की जजीरो से छुटकारा पाकर स्वतंत्र सम्यग्दर्शन की उपासना की ओर गतिशील है।

३० वर्ष पूर्व एक संप्रदाय दूसरी संप्रदाय को हीन दृष्टि में देखती थी। गुरुओं द्वारा मम्यक्त्व दिलाया जाता था। इसी कारण एक संप्रदाय, दूसरी सम्प्रदाय को मिथ्या और उनके अनुयायियों को मिथ्यात्वी कहते थे। एक मजहब का अनुयायी दूसरे मजहब के अनुयायी को म्लेच्छ, काफिर, मिथ्यात्वी आदि कह कर तिरस्कृत करता था। सम्प्रदायिक प्रचार में मानवों की निर्भ्रम हत्याण धर्म का कार्य नमस्ती जाती थी। आज युग बदल रहा है। मानव-मानव को समझने लगा है। जाति में ऊपर उठने लगा है। ऊँच नीच का भेद भूलने लगा है। अच्छा बुरा धर्म कहना बंद करने लगा है। सभी जाति, वर्ग, देश और धर्म वाले एक साथ बैठकर अपना समन्वय मार्ग प्रशस्त करने लगे हैं।

युग बदल रहा है, युग बदल रहा है की मीठी ध्वनियाँ समवेत स्वरों में हृदय एवं श्रव्य यंत्रों के द्वारा गार्ड जा रही हैं। समय एक दम बदल रहा है। कल बया होने वाला है, कोई कुछ नहीं बोल पाता। चीन और अमेरिका एक साथ बैठ स्नेह बढ़ाते हैं तो रूस और अमेरिका भी पीछे नहीं रहते। भारत-पाक सम्बन्ध भी ठीक बनने जा रहे हैं। यदि नहीं बने तो आने वाला युद्ध निर्णायक युद्ध होगा।

भारत मदा सब जातियों धर्मों तथा भाषाओं को अपनाने वाला देश रहा है। पड़ोसियों से नेह चाहता है, लेकिन पड़ोसी यदि घृणा करता है, तो वह उसका प्रतिफल अवश्य पायेगा, इसमें पूर्ण विश्वास करता है। भारत ही एक ऐसा देश है, जिम्ने प्राचीनकाल में आध्यात्म ज्ञान का विस्तार किया। मानवों के हित में यात्रिक उन्नति की जगह आत्मिक उन्नति की ओर बढ़ाने का प्रयास किया। मानवों को हिल-

प्रजा को चूसने वाला कोई नहीं रहेगा । रहेगे सभी विवेकशील मानव और मानवों के हित के लिए धर्म, राष्ट्र, भाषा, साधन और साधनों का उपयोग ।

इक्कीसवीं शताब्दी युग परिवर्तन की शताब्दी है । अतः प्रति-दिन युग बदल रहा है । समाज बदल रहा है । धर्म बदल रहा है । वर्ग बदल रहा है । मस्तिष्क बदल रहा है । राष्ट्र बदल रहा है । विश्व बदल रहा है । विश्व का क्रम बदल रहा है । अनन्त विश्व का परिक्रमण बदल रहा है । इसीलिए मैं कहता हूँ—युग बदल रहा है और शीघ्र बदल रहा है । ईश्वरीय युग आ रहा है । सर्वोदय युग आ रहा है ।

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखं भाग्यं भवेत् ॥

जैन प्रकाश ६ अक्टूबर, १९७२ ई०

श्री अमर भारती



विस्तार के बदले द्वेष, लड़ाई-भगड़े बढ़ाये हैं। सहयोग की जगह असहयोग का वातावरण बनाया है। सह्यस्तित्व को न पाकर अपने-अपनों का अस्तित्व जुटाया है। जो जिस मजहब का अनुयायी होता है, उसी की देखभाल और सुख-सुविधा का खयाल रखता है। मानव धर्म के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। कोई अपने को हिन्दू कहता है तो कोई मुसलमान, कोई क्रिश्चियन तो कोई बौद्ध। इनमें भी छोटी-छोटी कई सम्प्रदायें हैं। इस तरह इतने सारे बाड़ों में मानव जैसा विकसित बुद्धि का प्राणी फँसा हुआ है। इन बाड़ों के आगे उसकी गति नहीं दिखती। इन बाड़ा-बन्दी में ही वह ईश्वर ढूँढता है। स्वर्ग और मोक्ष देखता है। ये मजहब के प्रचारक एक दूसरे से धृष्टित व्यवहार करते नहीं चूकते। बड़े में बड़े मिद्धान्त तात्त्विक, तार्किक और वैज्ञानिक भी इन बाड़ाबन्दियों में फँसे हुए हैं, लेकिन उनकी बुद्धि अब इन बाड़ाबन्दियों को तोड़ कर अखण्ड मानव समाज, अखण्ड मानव-धर्म और अखण्ड मानव-राष्ट्र बनाने की कल्पना करने लगी है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे पहुँचे हुए मानव भी हैं, जो मानव समाज को मानते हुए भी इसमें बढ कर निकट संपर्क में आने वाले जलचर, थलचर और खेचर प्राणियों के साथ भी सहयोग करना चाहते हैं और अपनी मँत्री बढाना चाहते हैं। कुछ ऐसे भी मानव हैं, जो जीवत्व वाले सभी तत्वों और उनके क्रियाशील रूपों तथा आकृतियों का भी संगठन करना चाहते हैं। उनके साथ भी मँत्री और सहकार का हाथ बढाना चाहते हैं। वे ऐसा समाज देखना चाहते हैं जिसमें तमाम जीवत्व समा जाय।

गरीब से गरीब और मूर्ख से मूर्ख के दिमाग में भी यह आ गया है कि दुनिया की उपलब्ध जितनी वस्तुएँ हैं, सबके लिए समान उपयोगी हैं। सबको उपयोग करने का अधिकार है। कुछ अधिक संग्रह करता और कुछ साधनहीन क्यों रहे ? धरती, धन और साधनों का

है, जो अदृश्य रूप से सारे लोको में गतिमान है। जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रुव्य रूप में सबसे वर्तमान है। वही सत् है। वही ॐ है। वही प्रणव शक्ति है और वही पूर्ण है। उसी का अस्तित्व था, है और रहेगा। अतः वही हमारा इष्ट है।

मंत्र

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥

उद्देश्य

- (१) प्राणि मात्र के एक जगत् की स्थापना करना।
- (२) सम्पूर्ण प्राणि जगत् की पूर्ण उन्नति करना और उन्नति में सहयोग करना।
- (क) प्रथम चरण में बिना धर्म जाति व देश-भेद के अखण्ड मानव समाज की स्थापना करना, मानव धर्म और मानव राष्ट्र का निर्माण करना और तीनों के प्रयत्न में पूर्ण योग देना।
- (ख) द्वितीय चरण में मानव जाति के इदं-गिदं जो अन्य जलचर नभ-चर और थलचर प्राणि समाज हैं, उनके साथ मर्क स्थापित करना और उनकी उन्नति में पूर्ण योग देना।
- (ग) तृतीय चरण में शेष सभी चर और अचर प्राणि-समाज को अपनी समाज का अंग समझ कर उसकी उन्नति में योग देना।
- (३) सभी प्राणियों में ज्ञान और क्रिया का पूर्ण विकास कर अनेकान्त एव सहकार धर्म का प्रसार करना।

मे लाना । क्रोध, मान, माया, लोभादि कपायो को नष्ट करना । अनर्थ दण्ड का त्याग, समता का नियमन और अतिवि का स्वागत करना । इस लोक और परलोक के सुख की कामना से रहित बन कर, साधनो का कभी संग्रह नही करना । उपभोग साधन समान भाग से वितरित कर जीवन यापन करना ।

(८) पृथ्वी पिण्डो के अलावा अन्य पिण्डो के अपने तत्व वाले माथियो को अपना मानना और उसके साथ सपर्क स्थापित करने मे पूर्ण योग देना ।

(९) सच्चिदानन्दमय परमतत्त्व को पाकर उसी मे समा जाना, तत्त्वमय हो जाना । तत्त्वमसि मे लय हो जाना । अजीव तत्त्व मे छुटकारा पाकर मुक्त बन जाना ।

(१०) जो अपनी परम्परा के अनुयायी हैं, उनमे भी उपर्युक्त कार्यों की गति रहे, इस तरह का सवोधन, अन्तिम जीवन क्षण मे अनुयायियों को देना और उन्हें कर्त्तव्य के प्रति सकेत करना ।

कार्यकर्ता

(१) परम साधक — जो राग-द्वेष को जीत कर तथा अन्तर के क्रोधादि दुश्मनो और बाहर के सकल जगत् के हृदयों को जीत कर अरिहत और अरहत बन जाते हैं, जो अपने परम तत्व को पा जाते हैं और जिनका सपूर्ण लोक का प्राणी-समाज अपना बन जाता है । प्राणी-समाज के साथ की यह पूर्ण अभिन्नता सहज्योति का प्रकाश करती है । ऐसी ज्योति वाला हमारा परम साधक है । वह सबका नायक है, हमारा दिव्य पुरुष है, वही हमारा प्रधान कार्य-कर्ता है ।

(२) सफल साधक — जो कभी प्राणी-समाज के बीच कार्य करता रहा है और साधना मे सफल होकर तत्व मे समा गया, सच्चिदानन्दमय बन गया, वह सफल साधक है ।

संस्कृति का अर्थ

संस्कृति सम्यता का मूल है। वह एक ऐसी बन्धनात्मक कृति है जिसके द्वारा जीवन के प्रवाह को उत्कीर्ण या प्रकीर्ण किया जा सकता है। सम्यता पार्थिव रूप है और संस्कृति आत्मरूप मानसिक आधार है।

संस्कृति की व्युत्पत्ति म + कृति से हुई है। म से सम्यक् या समान प्रकार की कृति अर्थात् क्रिया रूप में व्यवहृत प्रवृत्ति को संस्कृति कहते हैं। तात्पर्य यह, जो प्रवृत्ति समाज में समान रूप में व्यवहृत है, उसे ही संस्कृति कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक प्राणी वर्ग की सामूहिक कृति का ही नाम संस्कृति है। इसीलिए उसे मस्कारों की सृजनकारी माता भी कहा जाता है। संस्कृति प्राणियों के आचार, व्यवहार और जीवन-यापन की एकता का ही दूसरा नाम है। हर प्राणी का जीवन-यापन का अपना निजी ढंग होता है और साथ ही हर मसजक प्राणी समाज में एकत्र होकर रहना निभना और सामाजिक बन्धनों के अनुकूल चलना पसन्द करता है। अतएव जब प्राणी, अपने समाज में सगठित या एकत्र होकर रहता है, तो उसे जीवन-यापन के अपने निजी ढंग को सामूहिक ढंग में परिवर्तित करना पड़ता है। अपनी तरह दूसरों को समझकर उदारभाव प्रकट करने पड़ते हैं और इस तरह की निबहने की जो प्रवृत्ति है—वही संस्कृति कहलाती है।

प्रत्येक प्राणी-समाज के जीवन-यापन के नियम या तरीके होते हैं, जिन्हें वह समान रूप से निभाने की कोशिश करता है। समय, क्षेत्र

३। वे मानवेत्तर प्राणियो और मानव सस्कृति मे बहुत साम्यता का अनुभव करते हैं। सामूहिक जीवन के निर्वाह के मूल स्रोत सस्कार कहलाने हैं और उनकी व्यवस्थित कृतियाँ समान रूप मे अनुभूत होने वाली सत्यम्, शिवम् मुन्दरम् की प्रवृत्ति की एकता भी सस्कृति है।

इस प्रकार सस्कृति भावात्मक एकता का मूल स्रोत भी है। वह अनेक रूप होते हुए भी मूल मे एक है। समाज मे शान्ति और व्यवस्था सभी को अभीष्ट है और शान्ति की अनुभूति आनन्द के रसानुभव के व्यक्त रूप विश्व के सभी वर्गों मे करीब-करीब समान है। नाघनो की भिन्नता और प्रयोगो की भिन्नता अनिवार्यत होती ही है, पर मानव एकता का मूल आधार सस्कृति के बृहद् रूप मे मिल ही जाता है।

इस प्रकार सस्कृति सत्यम्, शिवम्, मुन्दरम् की आधार शिला है। प्राणी या मानव सस्कृति के द्वारा आमोद, प्रमोद और विनोद का प्रेय और शान्ति, व्यवस्था तथा मुक्ति का श्रेय ग्रहण करते है।

वस्तुतः अनुरुक्ति और मुक्ति दोनों ही सस्कृति की देन है। भोग और त्याग एक दूसरे के पूरक है। भोग के बाद त्याग आवश्यक है। इसी तरह अनुरुक्ति के बाद मुक्ति आवश्यक है। जीवन श्रेयस्कर-सस्कृति मुक्ति को प्रदान करती है। कर्मों का आत्मा से दूर होना ही मुक्ति है। सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति ही मानव की परिष्कृत सस्कृति है। इसी अर्थ मे सस्कृति पूर्ण शाश्वत और हितकारी है। सस्कृति भुक्ति और मुक्ति दोनों के लिए आवश्यक है। सस्कृति का सही अर्थ-सार्थक्य (सार्थकता) मुक्ति मे है।

—आलोक वाषिष्ठी

—वसुमति मासिक

श्रीर मान का विस्तार करना । बदले में धनिकों को सघ नेता बनाकर स्वर्ग के स्वप्न दिखाना । यही परिधि अनेक घेरो-सप्रदायों को जीवित रख रही है ।

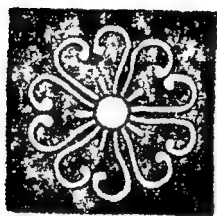
कहते हैं—अपनेआपको अकिंचन-अपरिग्रही, लेकिन इनके भक्तों का जितना परिग्रह है, सब इन्हीं के इशारों पर नाचता है । स्वयं मेठ बने हुए हैं । मुनीम रूपी सेठ श्रावकों को धन सभला रखा है । गत ये सघ का श्रेय नहीं कर सकते । कहने को मात्र त्यागी हैं ।

महावीर को देखा किसने ? अच्छा कर गये तो उनके नाम की काने चला ही रहे हैं । जय बोल ही रहे हैं । उनकी वाणी मुना ही रहे है । उनके अनेक रूपों में सघ चला ही रहे हैं । हमको कोसते क्यों ? हमने कौन-सा महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी को मनाने का ठेका ले रखा है ? ठेका लें भी तो कुछ कमाने के लिए ही तो तैयार । मारे ससार का विमर्जन तो कर दिया, अब तो सग्रह करने दो, यह आज के प्राय सभी श्रमणों एवं अग्र नेताओं की भाव-भाषा बोल रही है । यदि ऐसा नहीं है तो एकता बनाने और मताग्रह छोड़ने में इनको क्या जोर पड़ रहा है ? गाँठ की कौनसी पूजा खर्च करनी पड़ रही है । अपने जीवन व्यवहार का मारा बोझ समाज पर डाल रखा है और सघ को विशृंखलित कर अपना यश विस्तार का बोझ भी समाज पर, यह कितनी विडम्बना है ?

इन सप्रदायवादियों ने २५००वीं निर्वाण शताब्दी की महा-सभा में भी घेरे डाल रखे हैं । इन बड़े घेरो में भी एकता के खुले विचार उसके प्रकाशन में छप नहीं सकते । कई सप्रदाय के मासिक प्रकाशन तो ऐसे विचार छापने में कतराते हैं । इतनी व्यापक माप्रदायिकता यदि जैन धर्म में पनपा रहे है तो सिर्फ साधु समाज के अग्र नेता ही पनपा रहे है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन सभी

मैं उन सभी विद्वानों, विचारकों, समाज सुधारकों एवं धर्म प्रचारकों को आमंत्रित करता हूँ कि यदि आप उपरोक्त विचारों के समर्थक हैं, तो शीघ्र मुझे अपनी स्वीकृति लिख भेजें। ऐसे साधियों का एक मघ बनाना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि इन सभी साधियों के शरीरों का धर्म प्रसार हित सही उपयोग हो सके।

— जैन प्रकाश



खूब छक होकर छानते हैं, खाते-पीते, पहनते और अच्छे मकानों में रहते हैं। सड़-मुसड़ या मुस्तड़े बनकर ससार के व्यवस्थित व्यवहार को बिगाड़ते हैं।

समय था, कुछ अच्छे आत्मान्वेषकों ने ससार से अलग होकर गवेषणा-
: आत्मा की, परमेश्वर की, विधि और विधान की खोज की। उनका
। सदा अन्वेषणों में लगा रहता था। अब आत्मवादियों का समय
फिसाद कराने में, साम्प्रदायिक मठों को चलाने में और गुल-गप्पे
ने में पूरा होता है। आत्मा की गवेषणा करने वाला अन्वेषक अब
ने पर भी नहीं मिलता। अभी का वैराग्यमय साधुओं का वर्ग,
। पाखंडियों का समूह मात्र है। मुफ्त का माल उड़ाना, धर्म के
। पर अपनी पूजा कराना, यही मात्र उनका काम रह गया है।

विरक्त कहलाने वाली संप्रदायों के आचार्य और साधु गृहस्थों
नी बढ कर संपत्ति और ऐश्वर्य को धारण किये हुए हैं। एक नहीं
क प्रकार के भोगों को भोगते हुए भी वे अपने संप्रदाय
गादीघर होने के कारण पूज्य माने जा रहे हैं। गृहस्थ वर्ग अध-
वासों से अपने बाप-दादाओं द्वारा मानी हुई संप्रदायों को महत्त्व
। आ रहा है। कई प्रबुद्धजन भी उनके शिकजो में फँसे हुए दिखाई
। ससार के कृत्य तो समझ में आ सकते हैं लेकिन इन विरक्तों
समाज के ससार को समझना बड़ा मुश्किल है। ये लोग सदा गृहस्थ
ों से गृहस्थों को छुड़ा कर, अपने बाड़े में फँसाते रहते हैं। आज
क्त के नाम पर ईश-दर्शन के लुभावने हथियारों से और अनन्त
नन्द की प्राप्ति के अदृष्ट लाभों से माधारण और पड़े हुए समाज
भावुक लोगों को आकर्षित कर निठल्ले समाज का वृद्धिकरण किया
रहा है। यही एक बड़ा आश्चर्य है कि गृहस्थ समाज भी ऐसे मानव
। जो को मान्यता देता हुआ अपने को धन्य मान रहा है।

जितने भी प्रचारक और जगत् के उद्धारक हुए उन्होंने मानव

विस्तार करना चाहता है। इस क्रिया से स्वभावतः हृदय की सरलता नष्ट हो जाती है, कटुता बढ़ती है और द्वेषमय वातावरण बन जाता है। साम्प्रदायिक भावना की तीव्रता से मानव-मानव की हत्या जैसा नृशंस कार्य भी कर बैठता है। एक सम्प्रदाय वाला अपने आचार्य में निष्ठा रखता हुआ, दूसरे धर्म की निन्दा करता है। आचार्य के बताये हुए मार्ग को सम्यक्त्व का सोपान कहता है और अन्य के पथ को मिथ्यात्व का पोषक घोषित करता है। स्वयं को सम्यक्त्वी तथा अन्य को मिथ्यात्वी कहता है। इतना ही नहीं, एक साधु वर्ग दूसरे साधु वर्ग को और एक श्रावक वर्ग दूसरे श्रावक वर्ग को भी हीन दृष्टि से देखता है। इस तरह के घृणित प्रचार से धर्म की जगह अधर्म, पुण्य की जगह पाप तथा अहिंसा की जगह हिंसा को स्थान मिल जाता है।

धर्मो की मान-पूजा के अखाड़े

वह धर्म किस काम का—जिस धर्म से शान्ति न मिले और पर का प्रेम नष्ट हो जाय। क्लेश, ईर्ष्या, दभ, पाखण्ड और हिंसा प्रवृत्तियाँ फैले, वह धर्म कैसे हो सकता है। धर्म सदा सबसे मिलकर आसिखाता है। धर्म आत्मा में शान्ति पैदा करता है, कपायो को करता है। धर्म शान्ति और व्यवस्था फैलाता है। जब धर्म, पथ सम्प्रदाय के रूप में उभर कर आता है, तब वह मानव समाज के विनाशकारी बन जाता है। जितनी भी सम्प्रदायें हैं और जितने पथ हैं, उनके प्रवर्तक आचार्य एवं भक्त लोग स्वत्व से प्रेम करने होते हैं और परायो से घृणा करने वाले होते हैं। ऐसी सम्प्रदाय पथ, धर्म नहीं कहे जा सकते हैं। वे तो उन प्रवर्तकों की मान-पूजा के अखाड़े ही कहे जायेंगे और उनके भक्त अन्धश्रद्धाशील बनकर जन्म और परजन्म को भी नष्ट कर डालेंगे। कुछ अखाड़े वाले तो ते होशियार हो गये हैं कि अपनी बाढावन्दी को तो मजबूत बनाते और दुनिया में अनेकान्त, समन्वय और विश्व-धर्म सम्मेलन के मार्ग

पाती, न ही सबका सर्वमान्य एक स्वरूप ही बन पाता है। यह सब साम्प्रदायिकता का व्यामोह नहीं तो और क्या है ? क्या जैन धर्म का भी सम्प्रदायमयी आदर्श, विश्व के सामने प्रसारित करना चाहते हैं ? हम दिगम्बरत्व, या श्वेताम्बरत्व, सचेलकत्व या अचेलकत्व तथा अन्य स्त्री मुक्ति आदि के विभिन्न विचार, भिन्नता के पथ समन्वय से एक रूपता नहीं पा सकते। यदि जैन धर्म की विभिन्न सम्प्रदायें अपना व्यामोह नहीं छोड़ेंगी तो विश्व-धर्म के नारे, नारे ही रह जायेंगे।

अह का पोषण :

आचार्यों और प्रवर्तकों तथा समाज के अग्रनेताओं को इस स्थिति पर मोचना है। २५वीं सदी के जयन्ती महोत्सव को निरा प्रदर्शन मान करना है, तो अवश्य करिये, लेकिन धनपतियों के धन और राष्ट्र के राजकीय पैसे का निरर्थक व्यय, धर्म प्रचार के नाम से क्यों करा रहे हैं ? क्या विद्वान्, आचार्य, प्रवर्तक और नेता अपने अपने नाम के प्रचार-प्रसार के लिए, तो यह सब प्रोपेगेण्डा नहीं करा रहे हैं ? क्या अह का पोषण कर धर्म का पागण्ड तो नहीं फैला रहे हैं ?

सम्यकत्व के आइने में अपने को देखें

मैं उद्घोष करता हूँ—जनता सदा गतानुगति की लकीर पर चलने वाली है। आपकी भक्त है, धर्म के प्रति और महावीर के प्रति श्रद्धा में नत है। उसको अपने अह के प्रचार में गुमराह मत कीजिये। “साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो।” अपनी-अपनी मान्यता का मोह छोड़ो। अपनी सम्प्रदाय की परिपाटियों, समाचारियों का व्यामोह दूर करो और सभी जैनियों की सर्वमान्य समाचारी एव धर्म नियम बनाओ और उन्हीं का विश्व में प्रचार करो। ये अहमन्य पण्डित और धर्म विपरीत धन सग्रह वाले धनिक एक बार अपनी श्रद्धा शुद्ध करें।

विचार, आचार और प्रचार

आत्मा जब अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ना चाहता है तो उन्नत विचारों का उद्भव होता है, और विचारों की क्रियान्वयन शक्ति ही आचार के दायरे में आती है। आचार के बाद प्रचार कार्य ठोस और जगत् के उद्धार के लिए विशेष कामयाब होता है। यह तो रही आत्मा की ओर गति करने वाले मुमुक्षु जन की बात। लेकिन विश्व में सभी मोक्षार्थी नहीं होते। इस दुनिया में जो जिम्मा किसी भी प्रकार आचरण कर जीना चाहते हैं और वैसे ही विचार रखते हैं। विचार के अनुसार ही प्रचार होता आया है, अतः प्रचार भी उनकी चाह के अनुसार होता रहता है।

अब हमें यह देखना है कि जगत् की शांति और व्यवस्था के लिए कैसा रुख अपनाया जावे। विश्व के प्राणी मात्र सुख पूर्वक जीना चाहते हैं, अतः उन्हें शांति और व्यवस्था प्यारी है। हमारा कर्तव्य है कि हम इसी के अनुकूल अपने विचार बनावे और आचरण करें तथा प्रचार-प्रसार करें। यही एक सही मार्ग की कसौटी है। इससे आत्मार्थी जिसे हम किसी दृष्टि से स्वार्थी-अपना भला करने वाला कहते हैं वह भी मुक्त नहीं सकता।

स्वयं का भला तभी हो सकता है, जब दूसरों के साथ भला व्यवहार करें। अपनी आत्मा का भला चाहने वाला, जगत् की शांति का परम इच्छुक होगा। अतः हमें यह मालूम हो गया कि जगत् के प्रायः

प्रेम और सहकार धर्म के मूल पाये है । प्रेम आत्मा से पैदा होता है और सहकार ने विचार, आचार और प्रचार बढ़ता-फलता और फैलता है । सही माने में आचार की प्रशस्ति में प्रचार का महकार आवश्यक है । सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और सग्रह नियमन या जर्जन ये प्रेम के रूप हैं । इनके आचरण से प्रेम की वृद्धि होती है और मानव अज्ञात शत्रु, वीतराग, तथा परमात्मा बन जाता है । उत्तम चारों से प्रेम की प्राप्ति होती है और प्रेममय बन जाने पर प्रेम का प्रसार करने में विश्व शांति और व्यवस्था की वृद्धि होती है । प्रसार करने का अर्थ प्रचार से है । अतएव आत्मिक उन्नति-चिन्मय होने की स्थिति और विश्व शांति के लिए उत्तम विचार, आचार और प्रचार की परम आवश्यकता है ।

सुधर्मा (पाक्षिक)

१५, फरवरी, १९७२



और हो सके तो विधर्मी बने और जिनके सहयोग से अकर्मण्यता का पाठ सिखाया जाय, उनसे सच्चे कल्याण की आशा कैसे की जा सकती है ?

जरा विचार तो करिये, वे क्या कभी किसी समाज को सुधार सकते हैं ? यदि नहीं, तो उन्हें यह अधिकार नहीं कि वे सामाजिक श्रुटियाँ ही निकालने बैठें । उन्हें चाहिए कि इन बातों पर विचार करें, उचित उपाय सोचें और सोचकर सहयोग दे, न कि सामाजिक आपत्तियों से डरे । प्रतिद्वन्द्विता के समय निर्णय करें कि कौन सत् और कौन असत् है । यदि निर्णय नहीं कर सकें, तो वह मानसिक श्रुति ही समझी जायगी । भला, ऐसी परिस्थिति खड़ी होने पर अपना कर्तव्य छोड़ देना कितना हीन काम है ? इससे कभी उन्नति नहीं हो सकती । यदि उन्नति चाहते हैं, तो ध्यान दें—खयाल करें और सोचें कि मैं कौन हूँ, किस रास्ते पर हूँ ? क्या ध्येय है ? कितना चला हूँ और कितना बाकी है ?

मनुष्य अनेक विकट उलझनों में जा गिरता है, पर यदि वह उस वक्त निराश हो जाय, तो फिर सर्वत्र अन्धकार ही समझिये । जब आत्मा और दुष्कर्मों में प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण युद्ध होता है, तब यदि फिसलें तो नीचे मिथ्यात्व रूप कूप और वढ़ें तो सम्यक्त्व रूप सुलभ मोक्ष-मार्ग है । ठीक यही दशा वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय कार्यों में होती है । इन अवस्थाओं को जीतने वाले विजयी होते हैं ।

समाजोन्नति की आकांक्षा वाले बहुत हैं, फिर भी सहयोग देने वाले बहुत थोड़े हैं । सहयोग देना तो दूर रहा, कार्यकर्ताओं की हँसी उठाना और श्रुटियाँ निकालना ही वे अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं । ऐसी ही अवस्था में उनका समाजोन्नति की आशा करना, यह कहा तक ठीक है ?

एक सस्था दूसरी सस्था को नीचा दिखाना चाहती है और इसी कारण से दोषावलोकन करने को उद्यत रहती है । फिर बताइये कि

मनुष्य ससार में उत्पन्न हो अकाण्ड ताण्डव रचते हैं—किसी को सच्चा, तो किसी को झूठा बना देते हैं। कोई जाल फैला रहा है, तो कोई रुपया लुटा रहा है। कोई किसी को मार रहा है, तो कोई किसी की रक्षा कर रहा है आदि अनेक कार्य प्रतिदिन होते दिखाई देते हैं, पर ये सब एक सुख के पीछे ही हो रहे हैं। जब मनुष्य मासारिक पीडाओं में विकल हो जाता है तब वह या तो ससार से चल बसने की कोशिश करता है या साधु बनकर शान्ति मार्गावलम्बन करता है। सब कार्य करते हैं अच्छे के लिए, पर हो जाते हैं, बुरे। कारण यही है कि हम अर्थ और काम में ही सुख मान बैठे हैं और रातदिन उसी के पीछे दौड़ा करते हैं। जब इच्छा सफल नहीं होती है, तब दुःखी होते हैं। यही तो मानसिक त्रुटि है, भूल है और कमजोरी है। यदि ध्यान रखकर कार्य करे, तो कभी ऐसा मौका नहीं आ सकता, पर यह सोचे कौन ?

इसीसे आपको स्पष्ट हो गया कि मानसिक त्रुटि ही सबमें विघ्न पैदा करती है, अतः इससे जल्दी दूर होने का प्रयत्न करे और दृढ़ भावना हृदय में धरे। फिर देखें कि कैसे कार्य सफल नहीं होते हैं।

जैन प्रकाश

२२ नवम्बर, १९३१



करने के लिए उद्यत प्राणी को चार बातों का खयाल करना आवश्यक है—देश, काल, द्रव्य और भाव ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये शब्द जैनी साधु के मुंह पर जमे हुए हैं और वे इसके अनुकूल करते हैं या नहीं, यही सोचना हमें निराशा में डुबोता है ।

‘करना है’ कितना आकर्षक शब्द है । करने वाला प्रिय बन जाता है । यह भी जानते हैं कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से किया हुआ ही सफलता की तराजू में तुलता है । आज मानव समाज को किसकी जरूरत है और हम क्या कर रहे हैं ? इतनी सी बुद्धि हमें प्राप्त हो जाय, तो हम कुछ कर सकते हैं ।

आज हमारा समाज धन और धनिकों से आप्लावित है, लेकिन अकर्म रोग से पीड़ित है । ‘कुछ करना’—कोई करना नहीं है । ‘करना है’—यह कर्म कहलाता है । समाज में अकर्मण्यता का पाठ बढ़ता जा रहा है । व्यापार की गति मद पड़ रही है और साधुओं की विरागता की गति भी रुद्ध हो गई है । साधु अपनी क्रियाशीलता का प्रयोग मान और प्रदर्शन के लिये करते हैं, अतएव थोथे भाषण और प्रदर्शन बढ़ते जा रहे हैं । नवयुवक इन भड़कीले कार्यों से प्रथम आकर्षित हो जाते हैं, लेकिन बाद में असरहीन प्रभावहीन और कांतिहीन बन जाते हैं ।

उपदेश सूत्रों से भरे हैं । भगवान् ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर प्रवृत्ति करने का आदेश दिया है । श्रावक व साधु, श्राविका और साध्विया, सभी उसी प्रकार प्रवृत्ति करते हुए अपने को सिद्ध कर रहे हैं । सभी प्रवृत्तिकारक अग अपने को ठीक रास्ते पर मान रहे हैं । अतएव कर्मण्यता का अजीर्ण होना, समाज अपने मुख से नहीं कहती लेकिन भेरी मान्यता और समाज का दीर्घ अनुभव है कि समाज की अकर्मण्यता का अजीर्ण हो चुका है । अकर्मण्य तो समाज

उपदेश है और उपदेश कानों पर पड़ता है, लेकिन ऐसा करने से क्या होगा ? हमें क्या मिलेगा ? आदि प्रश्नों ने हमें कर्मण्य वनने से दूर कर दिया है ।

आज का वातावरण—दुनिया में ज्यों त्यों कर पैसा कमा और मोज़ कर का उपदेश व्यवहृत हो रहा है । उपदेश और लेख मुन्दर होते हैं लेकिन कार्य स्वाथमय लोलुपता से भरे हैं । ऊपर से रगे सियार का 'सेवा और त्याग' मोटो लगा रखा है ।

कमा खाने और दुनिया को लूटने के लिये ये बाने बड़े सुलभ हो गये हैं । ये ही कर्म वन गये हैं ।

कर्म का पाठ उड़ गया, कुकर्म का पाठ पढ़ाया जा रहा है । मानवों की दया करने वाला मानव लाखों में एक दिखता है । उसे ये वाक्य सुमधुर लगते हैं—तू तेरा कार्य करता रह दुनिया किधर भी बदले और फल कुछ भी मिले । ऐसे कर्मवीर दुनिया के भले के लिये सर्वस्व बलिदान करते हैं ।

आज का कर्मचारी, आज का पदाधिकारी, आज का कृपक, आज का परिश्रमी और आज का साधक वर्ग ढोंग और पाखण्ड से जिमें प्रदर्शन कह सकते हैं, ठगई का प्रचार कर रहा है । सभी अपने स्वार्थों की आग में झुलस रहे हैं, न स्वत आनन्द पा सकते हैं न दूसरों को आराम देते हैं । कभी सेठ मिल बन्द करता है, तो कभी मजदूर स्ट्राइक करता है । कभी कर्मचारी रिश्वत लेता है, तो कभी कृपक अपना अनाज छिपा कर दुनिया को भूखो मारता है । साधक वर्ग आत्म भान को भूल, रस लुब्ध बनता है और पदाधिकारी पथभ्रष्ट बन कर इनाम, भेंट, पद लोलुपता की बक्षीसे स्वीकारता है । यह है इस दुनिया का रंग ।

कर्म करने में सभी निपुण हैं, नेता और जनता दोनों सावधान

उत्कर्ष या उत्सर्ग

ससार का वह प्रबल बल कहीं लुप्त हुआ, जिमने एक बार ही वरन् अनन्त बार प्रेम-प्रवाह द्वारा अपने अकाट्य ग्रहिमा सिद्धात विश्व व्यापी बनाया ? वह शक्ति कहीं विलीन हुई, जो घट-घट में नता की, एकता की, उदार भावना की स्रोत बहाती थी ? वह त्र्यं कहीं चला गया, जिसके प्रभाव से हमारा यह देश हरा भरा धन-वान्य निष्पन्न, गोकुल-वृन्द पोषक या तथा व्यापार आदि की दृष्टि से ससार का गुरु माना जाता था ? यह राज्य कहीं गया, जमे राम-राज्य की प्रबल सत्ता थी, राजा प्रजा का पवित्र प्रेम था, इन दृष्टि और शिष्टता पूर्ण व्यवहार-नीति कुशल था तथा पार-केक सुखो का आह्वान करता था ? वह तेज किस प्रवाह में वह , जिसका भारत-भूमि का एक-एक कण तपश्चर्याधारक स्वियो के स्वेद (पसीने) से भीगा हुआ है—अत्युत्कट मार्गावलम्बन गण्यात्मिक ज्ञान का पवित्र-स्रोत ससार में बहा था और उम त्रात्म-तेज की कातिमय अनन्त वीर्य निष्पन्न स्थिति को देखने के मारा जगत् तत्पर था ? उम निगण्ठ-धम्म के शाति-साम्राज्य को हडप गया, जिसने कि माया रूपी राक्षमिनी की गरदन पर ना झुका फहरा कर ससार में ममत्व का राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तथा जिसके पवित्र-शाति-रस सनित नियमों ने बदनीतिया, ण्डावाद तथा गुण्डाशाही राज्य तृप्त होकर पलने के लिये खूटे बघ थ ? वह साधुता कहीं गई, जिसे कल्याण करने का एक मात्र

वना की वृद्धि होगी। तेरे आने से ही यह अज्ञजिन-समुदाय अपने
त्व की रक्षा करने में तत्पर हो सकेगा।

ऐ जिन-समाज के जवाबदार जैनियो। क्या आप इस उन्नत
युग में युग धर्मों की गिनती से भी जैन धर्म को वचित करने जा रहे
हैं। आपका वह सघ बल कहा चला गया? जिसके सहा
यों का झुंड सारे विश्व में फहराने लायक बन सकता है
तो क्या चाह है? उत्कर्ष की या उत्सर्ग की? मालूम होता
है इन दोनों से निराला अपकर्ष ही भाता है। तभी तो सघ
सत्ता में वृद्धि करने से डरते हैं। अहो! उत्कर्ष को चाह है,
उत्सर्ग क्यों नहीं करते। अरे, इस फूट और छनेबयमय ममत्
त को दूर नहीं करते? जब तक आप शरीर के व्यापारों को दूर
शरीर से माया वृद्धि दूर नहीं कर लेंगे, तब तक ध्यान छ
सकते। तो फिर इस ममाजोत्कर्ष में भी अपने शरीर और
अत्यन्त निकट ममत्व धर्म को (पथ और सम्प्रदाय प्रवृत्ति को)
कहो कि मान पूजा सम्बन्धी व्यय के दुर्भावों को क्यों नहीं
और श्रेष्ठ सघ बल की क्यों श्री वृद्धि नहीं करते? एक
प्राप्त करने के लिये अमह्य शरीरों का उत्सर्ग करन
तो क्या महाशरीर के उस पवित्र सघ साम्राज्य की श्री वृ
लिये सिर्फ अपने गन्दे और थोथे विचारों का उत्सर्ग नहीं क
नहीं, कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। भला, जिनत्व
वित्तुल नष्ट थोड़े ही हो गया है? इसीलिये तो बार-बार फीजदार
(मैनापति) अपने सैनिकों को रणभेदी की आवाज के साथ पुकारता
है कि उत्कर्ष चाहते हो तो उत्सर्ग की परवाह मत करो, शरीर राष्ट्र
त है और राष्ट्र तुम्हारा है। उत्सर्ग होगा तभी उत्कर्ष
की ध्वजा फहरा सकेंगे। क्या ये शब्द इस धर्म साम्राज्य के लिये
अनुपयुक्त हैं?

रक्षक या भक्षक ?

जलती हुई आग में ईंधन डालने वाला अग्नि को विशेष प्रज्ज्वलित करता है, लडाई के समय किसी भी पक्ष की पीठ ठोकने वाला युद्ध वेग को विस्तृत करता है, उमी तरह हिंसक प्रयोगों में सहकार करने वाला मौन को मोल लेता है। इस सिद्धान्त की जितनी गहराई तक पहुँचा जाय, कम है। मामान्यतया यह नियम है कि पडोसी या प्रेमी को सक्रिय सहयोग करना, हमारा फर्ज हो जाता है। किन्तु सक्रिय सहयोग का पचड़ा हल करना बड़ा दुष्कर है।

सामने वाला हथियार से अपने विपक्षी को पराजित करने को तैयार है। तब सक्रिय सहयोग हथियार द्वारा होता है या शान्ति साधना द्वारा ? इस प्रश्न के उत्तर जिनानुयायी जैनी भी द्वयात्मक प्रणाली में देते हैं। (१) पक्ष न्याय का है और हथियारों द्वारा ही न्याय कायम रह सकता है तो देश-प्रतिवध वाले श्रावक हथियारों द्वारा युद्ध में सहारा दे सकता है; लेकिन वार पहले सामने वाले का हो, तभी यह सभव है। (२) पक्ष न्याय का हो या न्याय से परे हो लेकिन हथियार द्वारा सहकार करना भक्षक बनना है। रक्षक वही हो सकता है, जो दूसरों पर वार करना सीखा ही नहीं। हथियार से हथियार भिड़ाना या शरीर की इन्द्रियों द्वारा व्याघात-प्रत्यापात पहुँचाना। भक्षक बनना है। दुष्ट से दुष्ट प्रत्याघाती को प्रेम द्वारा या क्षमा-सहनशीलता द्वारा पराजित करना उसके हृदय को जीतना है, जीवन को परिवर्तित करना है। जैसे को तैसा वाला सिद्धान्त प्रत्याघाती

उत्कर्ष सिद्धांत के प्रति अगाध प्रेम और सोत्साह प्रचार में ही सन्निहित है ।

हमारी औपघशालाएँ, पाठशालाएँ, धर्म स्थान के और साधु मस्याएँ सभी अहिंसा के स्थान अहिंसक सैनिकों के शिविर बन जायें । एक बार फिर अहिंसक मठ देश के कोने-कोने में कायम हो जाय, तो भावी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर शीघ्रतया शांति आधिपत्य पा सकती है ।

हमारा भक्षक है वही कालान्तर में रक्षक बन जाय—ऐसा ही कार्य करना हमारे लिये हितकर है । हिंसक प्रचारों और कार्यों में किसी भी तरह की मदद करना अहिंसा की जड़ को काट कर नष्ट करना है । अहिंसा के बिना सत्य, न्याय, समता, एकीभाव आदि सार शांतिकर सिद्धांतों का पोषण नहीं हो सकता । जिस दिन यह कार्य विशेष प्रगति करेगा, उस दिन गांधी सरीखा प्रचारक भगवद् रूप पूजा जायगा । जैनी द्वितीय गांधी पैदा नही करेंगे तो इसका श्रेय हमारे की कोई न कोई जाति करेगी ही, कारण दुनिया में शांति की गह दिनोदिन बढ़ेगी और निश्चय बढ़ेगी ।

—जैन प्रकाश दि० १२-६-४०

जयन्ती मना रहे हैं ? मुझे तो पूरा शक है कि ये जयन्तियां नहीं मना रहे हैं । अपितु अपने-अपने मताग्रह द्वारा मुझ महावीर को अपमानित कर रहे हैं । दुराग्रह की आग ने महावीर के असली रूप को, असली सिद्धान्तों को और असली मार्ग को विकृत कर दिया है । फिर भी जयन्ती मनाने का ढोंग रच रहे हैं । पिता को मार कर पुत्र शौकाकुल होने का जैसा ढोंग करता है, वैसा ही मेरे अनुयायी मेरे सिद्धान्तों की व्यापकता को, मेरी जयन्ती मना रहे हैं ।

मदमाते मान के पुजारी ! शासन के हाथियों ! आचार्यों ! वनायकों ! क्या आपको अपने शासनपति महावीर के गुरुत्व का कुछ पान है ? दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरापन्थी, तारणपन्थी, पीताम्बरी, इनपन्थी, गुमानपन्थी और न मालूम क्या-क्या पथ बना डाले हैं । अपनी अपनी बुद्धि अनुसार श्रृंखला अनुयायियों को किस तरह पार्टियों में डाल रहे हैं धर्म के नाम पर, मेरे सिद्धान्त के नाम पर, मेरी पूजाओं के नाम पर या शासन सूत्रों के नाम पर आपस में क्यों लड़ा रहे हैं ?

क्या मैंने पासड़ में धर्म बताया, अलग-अलग सम्प्रदाय खड़े करने में समन्वय बताया और आपस में भाइयों को लड़ाने में क्रिया रूप बताया ? अहिंसा के अवतार, सम्पूर्ण हिंसा के त्यागी माधु पाज का, आज का दृश्य देखकर मैं तो बहुत विचार में पड़ गया हूँ ।

जब तक जैनियों के सभी फिरतों का समन्वय नहीं होता, जब तक भी जैनी एक मार्ग के अनुयायी नहीं बनते, जब तक सभी साधु माध्वी, ावक, आदिकाएँ एक मध (वीर सध) के नीचे आकर कार्य नहीं करते और जब तक चारित्र्य और साहित्य की रचना और क्रिया में कल्पना नहीं आती, तब तक मेरी पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी मनाना, री गिल्ली उड़ाना है ।

मेरे पट्टनायकों ! गादीधरो ! ! आचार्यों एवं सधनायकों ! ! !

मैं कहता हूँ कि इस प्रदर्शन के ढोंग को दूर कर एक बार नहीं, र-बार एक मंच पर इकट्ठे होकर इस बात का निर्णय लो कि अब किस तरह एक ऐसा मार्ग निकाल कर चले कि सही मान में १००वाँ निर्वाणोत्सव वीर शासन का प्रेरक बन जाय । चाहे महामुनि ध्यानन्दजी हो या युग प्रवर्तक तुलसी गणीजी अथवा आचार्य मन्नाट् नन्द ऋषिजी । इसी तरह अन्य आचार्य, महामुनि, पथ चालक और पट्ट सत हो । उनके दिलों में एक याग होनी चाहिए, वह अभी तक तो नहीं हुई है । एक भूख जागृत होनी चाहिए, जो अभी तक नहीं है । क्या दिगम्बर, क्या श्वेताम्बर, क्या तेरापथ और क्या साधु-गों या स्थानकवासी सभी अपनी-अपनी ढपली, अपने-अपने ढग में नाकर निर्वाण महोत्सव की खुशिया मना रहे हैं । कगोड़ो, अरबों रुपये प्रचार प्रदर्शन, प्रकाशन और वितरण, स्मृति प्रशस्ति के आसन हो जायेंगे । उनके साथ द्रव्यदाता, प्रेरक और उद्घाटक के भी अधिक हो जायेंगे, लेकिन महावीर के शानन के लिए, वीर पथ का अनेकान्तमय समन्वय का प्रतीक एक ढाँचा बन नहीं पायगा । ही एक विडम्बना है, जो विद्वच्चक्षुगणों के मस्तिष्क में उठ रही है । हम की जगह काम को कोई स्थान नहीं । इन सारे परिनिर्वाण के ग्रन्थों में नाम ही नाम नजर आ रहे हैं । जिन सिद्धि के लिए इनका हाथोह मंच रहा है, उसका कहीं पता भी नहीं है और न उसके ही प्रयत्न ही हैं ।

"तेरापथ सम्प्रदाय जैसी एकता नहीं" यह कहकर पिंड छुड़ा-र बैठने वाले यशस्वी मुनिगणों और आचार्यों ! अपना समत्व समर्पण करो और सारे वीर समाज का एक अनूठे ढंग में समन्वय पूरक नया ढाँचा बनाओ । सभी सम्प्रदायों और उनके मार्गों को समी-रण कर एक मंच बनाओ, फिर आगे बढ़ो । सारा विश्व आपके चरणों में आ भुक्तेगा ।

नेति-नेति कहकर अपने आविष्कार की प्रगति अवरुद्ध कर देता है । नादि और अनन्त का निरूपण मानव मस्तिष्क की सर्वोपरि परिज्ञान की विष्कृति का परिणाम है । वर्धमान वीर का अनन्त ज्ञान अनेकान्त रूप में प्रशस्त हुआ । यह सबसे पूर्ण और सब दृष्टि में उपयुक्त जगत्-शान्ति एवं व्यवस्था का अमोघ अस्त्र है । वर्धमान मर्दव वृद्धियुक्त होता है । जो पूर्ण है, वह वर्धमान है । अपूर्ण है, वह हीनमान है । महावीर की वर्धमानता अनेकात मिद्धान्त की मर्जना में वर्तमान है । अनन्त काल तक वर्धमान एवं वर्तमान रहेगा ।

अनेकान्त विचारसरणि ही नहीं, अपितु अनेकान्तमय वर्तन और अनेकातमय जगत् का परिवर्तन और सत्ता रूप मर्यापित करने का मूल मंत्र । मारे जगत् अनेकान्तमय है, मारे ज्ञान अनेकान्तमय हैं, मारे आविष्कार अनेकान्तमय है और सारे समाज के प्राणियों के व्यवहार अनेकान्तमय हैं । अनेकान्त वास्तविक है और अनेकान्तता वास्तविकता है । यथार्थता अनेकान्तता है । महावीर ने सबसे श्रेष्ठ बोध मिद्धान्त रूप में अनेकात का दिया आचार विचार और प्रचार में जहाँ अनेकान्त है, वहाँ का मार्ग आनन्द का स्रोत व्यवस्था का भण्डार और शान्ति का साकार रूप है ।

जो विद्वान् महावीर को थोड़ा समझते हैं वे कहते हैं कि वीर विचारों में अनेकान्त, आचार में अहिंसा और समाज व्यवहार में परिग्रह का उपदेश और ज्ञान का वितरण किया । लेकिन जो वीर की सर्वज्ञता, अनेकान्तता और कैवल्य का ज्ञान रखते हैं, वे यही कहते हैं कि मारे समाज को मर्दवतन, मन्निदानन्द और सर्वज्ञ बनाने में महावीर ने अनेकान्त मिद्धान्त की मर्जना की । अनेकान्तवाद नहीं, मर्दव-मफन-अन्त मिद्धान्त है । एक का नहीं, अनेक-अनन्त का जहाँ भी हो, यही अनेकान्त है । सारा विश्व ज्ञान, वर्तन और सिद्धि का स्रोत अनेकान्त है ।

साद वास्तव में कुछ वाद हैं। लेकिन अनेकात अपने आप में
 विवाद का प्रतिकार है, विरोधार्थ (उल्टा) है। जो वाद हैं वे
 गीय हैं—विवाद युक्त है, अतः वे एकान्त का पोषण करने वाले
 अनेकान्त का अर्थ है—अनेक में जिसका अन्त है अथवा अनेक का
 अन्त है। अर्थात् एक का अन्त अनेक में और अनेक का अन्त
 होता है वह वाद नहीं रह सकता, वह मिथ्यान्त बन जाता है।
 एक एक पक्ष का पोषण होता, वाद रहता है। लेकिन अनेक—
 १ का जिसमें समावेश होता है वह वाद कैसे रह सकता है ?
 छोटे बड़े नातो और नदियों की अनेकता प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती
 लेकिन जब वे समुद्र में मिल जाती हैं तो एकता या अनेकता दोनों
 लीन हो जाती हैं और माग्न बन जाता है। माग्न के समान
 अनेकात है, अतः उसके साथ वाद शब्द का प्रयोग शोभा नहीं
 पाता।

जैसे वीर के आगमों में दृष्टिवाद है वैसे दृष्टिवाद में समिष्टवाद
 प्राबुध्य होता है। भिन्न भिन्न दृष्टियों में मिथ्यान्त की आगम
 स्वयं की और प्राज्ञवाणी की समझा जाता है, लेकिन वाणी
 आप में अग्रण्ड और अजस्र भाषों के लिये होती है। तीनों
 और तीनों लोक में जो अवाच्य हो, अकाट्य हो शास्त्र १।
 एक समान व्यवहृत हो, उसे हम वाद नहीं कह सकते। वर तो
 ग है।

जैसे प्रतिभा, मन्त्र, अचीर्ण, यज्ञाग्न और अपरिच्छिन्न पञ्चमीन
 प्रतिभा, सत्ययोग, प्रेम तथा ज्ञाति के दो भिन्न भिन्न गण हैं,
 १ मन्त्र। चारित्र्य के गण हैं और पूरा ज्ञान सत्य के प्राप्ति तो
 के लिए भिन्न-भिन्न चर्चा के गण हैं। उन्नी नव भगवान् महावीर
 गण्ड भर्म की यह धर्म लक्ष्यों की भिन्न भिन्न तरीकों में समझन
 में पूरा ज्ञान का स्रोत, उनका अनेकात मिथ्यान्त है। जो गुरु

अनेकानता है। जगत् के जितने धर्म मार्ग हैं, मजहब हैं, पन्थ अथवा
वाद हैं, उन सबमें अनेकात का अस्तित्व है, उन सबमें अनेकात
तमान है। त्रिना अनेकांत को समझे उनके स्वभावों का ज्ञान भी
नहीं हो सकता। उनकी अनेकातता ही उनका स्वरूप है। ये सब
सत्त्व, द्रव्य पदार्थ, गुण या धर्म मार्ग अनेकात हैं। यही पूर्ण हैं और
अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं को समझने के तरीके भी अनन्त हैं। वे सब
अनेकात मिद्धान्त के अनन्त रूप हैं। अतएव अनेकात अनन्त किरणों
वाला पूर्ण ज्ञान अथवा केवल ज्ञान रूपी सूर्य है, जो वाद न होकर
स्वयमिद अनेकात मिद्धान्त है और केवल जानियों द्वारा ही प्रशस्त
गिया हुआ है। अल्पज्ञों द्वारा बनाया हुआ वाद होता है। यह अनन्त
धर्मों का अन्त करने वाला अनेकान्त सिद्धान्त है।

जो प्रभु ने उम समय के प्रचलित वारों या धर्म मार्गों का
विरोध नहीं किया, अपितु उनमें रही हुई मत्पता का विश्लेषण कर
मनव्यय दृष्टि में सत्य का सही तरीका जगत् के सामने रखा और
सत्य न काम में लिया।

पर्यायवादी श्री जगद्गुरु जकराचार्य ने भाग्य के सभी धर्मों
और वादों को परास्त कर दिया लेकिन वे अनेकान्तमय वीर-धर्म
को परास्त करने में सर्वथा असमर्थ रहे। वे तो कहते थे कि "यह
बहुत बड़ी पात चूहा है, इसे पकड़ना बड़ा मुश्किल है। एक गिल
की मक्का पड़ता है तो दूसरे में चला जाता है।" इस तरह जो
जगद्गुरु पहले अनेकांत को मजहबवाद कह कर पुकारते थे, उन्होंने
ही इसे अनन्त त्रिना वाला चूहा कह अनेकात की सार्थकता कबूज
की। वे समझ गये थे कि यह एकातवाद को स्वीकारता नहीं है।
मजहब परेशा ने यह भी सत्य और बड़ा भी सत्य है, ऐसा मानता है।
कोई मार्ग और वाद पूर्णतया असत्य नहीं होते हैं और न अपने आप

महावीर का आत्म-दीप और हमारा अनुकरण

सामाजिक कामनाओं का त्यागी, वैरागी, भिक्षुक गणना में आता था, श्रेष्ठ मत जूझकर गाय के पास ऋजु चालुका नदी के किनारे रामक नाम के कृषक के क्षेत्र में जालिवृक्ष के नीचे गोदुहावन लगा कर ध्यान में तल्लीन हो, मन्त्रात्मभावों में विचरण कर रहा था।

वह समय महोन्मत्त कपामाकुल की वृद्धि करने वाली मना-ती एत भाव सम्पत्तीय, प्राप्ति धारक, मनमोहक, पृथ्वी का शृंगार रागों वाली स्वच्छाश्रम नभ और श्रेष्ठ चन्द्रिका ने प्रमृत्त चार प्रमाने वाली, रम्य-रम्य में मल्ली धुन मचा कराने वाली कामागिनी प्रमत्तदयी-गल्लु का प्रवर्णन का था। वह जग में जगजनि हो जीर्ण हो गई थी। उसने दिन निकट आ लगे थे। प्रमाण्ड प्रीप्ताप धपती तेजी को समार पर लिटवाने के लिये उमकी भूती हुई गर्दन पर था समारा था। समार में घन विभामिता ने धवुर धपती दुम रहे थे। मूर्ध की दिव्य प्राप्ति घन

महावीर का आत्म-दीप और हमारा अनुकरण

साधारण नामनाओं का त्यागी, वैरागी, मिथुर गमता में
थाने वाला, श्रेष्ठ मन भूभक्त शाय के गान कृत्रु वातुता नदी के तिनारे
शामक नाम के ऊपर के छोर में मानियुक्त के नीचे गौदुहावन लगा कर
गान में तन्त्रोंन हो, धनराशमभावों में चितरग का गान था ।

यह समय मदीमन गयायाकुर की बुद्धि करने वाली सतार
की एक मात्र समशील, शक्ति धारक, मरमोहार पृथ्वी का श्रमा-
रचने वाली, स्वच्छाभ नभ छोर श्वेत चन्द्रिका के धनुष धार परमान
वाणी तल-श्रम में मस्ती धुन मवा-रगने वाली कलशगिनी
मगन्तरीनी-पुन का मयगात्र का था । वह जग में जरचरित हा जीर्ण
हा गर्द भी । उनके दिन निकट था सगे में । प्रमोद दीप्तायथ
धपति भेरी की मसार पर लिटलाने के विवे लमरी भूरी हुई गर्दर
पर था भगता था । मसार में धव दिग्गति के धतुर धपती दम
हा जमीन में दबा कर माट हो रहे थे । मुँह की दिग्ग शक्ति धव
मनुष्य के हृदयों में जग कर रही थी ।

हीर वैशाख दुक्ता १०वीं की समानी प्रमोदर तम धनुषों
की १२२ चरन वाले, प्रमाद की जमीनन करने वाले, मस्ती श्रमा

करने के लिये उत्थित हो गया है । जिनका दाम मर्दव यह आत्मा बना
 रहा था आज उस योग पुजारी ने अपने मन को विकारादि ने हटाकर
 आत्मानुकूल बना दिया है । अब मन जैसी स्वतन्त्र विचरणा का न
 वाली बन्धु और इन्द्रियजनित कोटि दुःख आत्मा में रहे ही नहीं ।
 उपनिषदों में कहा है—“तनमनो विनम यानि तद्विष्णोः पञ्चमस्य ॥
 तस्मिन् मनो विनीयते मनसि सारूप्य विबल्ले शब्दं पुण्य पापे नशानिव ॥”
 शक्त्यात्मा सर्वपावस्थितः स्वयं ज्योति शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जन
 अन्तः प्रकाशयते ॥”

इसी तरह योगात्मा का आत्म दीप स्वयं ज्योति रूप शुद्ध,
 द्य, नित्य, निरञ्जन श्री-ज्ञान प्रकाश में युक्त हो गया । मनोर का
 ही स्वतन्त्र दुःख । योग की ज्योति आनुभविक रश्मियों में लीन हो
 ई । उदास कामनायें अपने गति के छूट जाने में तहाँ स्थित हो
 ई ? दुःखानी कष्टायादि रजनीकर अपना समूह लिये न मात्रम नहीं
 हो गये ? कहते हैं नापयं यः ५ वि योग का आत्म-दीप प्राप्त
 पार प्रकाशक अनन्त प्रकाश रश्मियाँ तो बिना नेत्र बली जाना
 समी नेत्र सिद्धक रहा है ।

न मत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् ।

तस्मा विष्णुर्नोभाति कुतो मर्माग्निः ।

तमेव भागमनुभाति गर्भं ।

तस्योनात्मा गर्भं पितृ विभाति ॥

आप भग के लिये द्वादश व्यापार बन्द हुए । नीचे योग में
 गति हो गई । देवदेव आकाश भाग में नीचे उतरे । अपनी विभक्त
 लुब्धियों को मन्त्रों हृदय से ही प्राण करके ही उत्थित हुए । नीचे
 योग में प्रकाश ही एक भगवत् की हो गई और अन्तः प्राणी सूर्य
 प्रकाश में दलते होते, पर शक्त भग में ही यह दुःख योग में गया ।

वीर-निर्वाण के पश्चात् देवों ने उरते वन ज्ञान की प्राप्ति करने वाले श्रेष्ठ मन का ज्ञान प्रवाण किम ऋषि का ध्या गृह बताने के लिये स्वयं भीम मारी पृथ्वी पर जनाकर उस वीर का अनुसरण करने के लिये दुनिया की मज्जा गम्ता बताया, क्योंकि वे द्विधा नहीं का सकते थे, अतः उन्होंने ब्राह्मण ही का दिग्गज और हम भोक्तृ मान्य हमारी धोखी नष्ट कर तेज-शीघ्र, निःशुद्धीय श्री नक्षत्री पूजन का शेषधन-दीप जनाकर ही मुक्त हो जाते हैं ।

अब देखिये और नुनता कीजिये और वा ध्यात्म-दीप, मुक्त का रूप दीप और ध्याता ध्यातृक दीप, इनमें जीवन दीप श्रेष्ठ है और जीवन में दीप की दीपावली मनानी आवश्यक है ?

जैतियो ! जय न ज्ञान-विद्याम्बाम् की दो धारों से बने जीवन और द्विजो-श्रावको ! धरती से बनी बने हृदय ज्ञानको ! भक्तियों ! मर्यादा नष्ट के अनुयायी ब्राह्मणों ! गामिज्य-गोपान्त्यादि वर्गों में बने मंसों और मंसों की रक्षा करने वाले धर्मियों ! क्या ध्याता (जैन धर्म की धान् विधाई बना की देवदत्त) बनी गयी प्रायेण-रक्षा करते हैं । अब भी ध्यातुत्तरण कर भूने ही आधोग ? क्या विरामोन्मय दीपों बना कर और धर्मों पूजा कर ही मता भोग ? भयकर भूने करते हूय भी प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप का मोक्ष भी नहीं करोगे ? २८७२ एवं पूर्ण हृदय और विद्या ही पूर्ण ; मेरिज उनसे याद अभी किसी न मर भी मोषा कि और न जैसा बग्न लडा का ज्ञाना उन्मत्त विद्या का । क्या हम सब भी मया याग द्वारा मरमोग कर उमरी मन्त्राण की मन्त्रणा कर सकते हैं या नहीं ?

वीर-प्रभु न तय ध्यान और ध्याता माय द्वारा धरती धरती ध्याता का प्रकाश प्रदीप जवा का, उस समय के ध्याता धरती की मर कर मर्यादा मोक्ष का प्रसार विद्या । तारे हिन्दू न धर्म

पानित पत्रों में कमना, हठतान आदि कार्यों में अग्रगण्य करना और
जातीय बंधनों में अपने को दानना विद्यार्थी-जीवन के बाध नहीं है।
विद्यार्थी अपने पाप में एक संपूर्ण व्यक्ति होता है और उसे शिक्षा के
धर्म में पूर्णता प्राप्त करनी होती है। जीवन के उदय निन्द को
मनस्क उमका प्रविष्टाण प्राप्त कर मपानवीनी बनता है।

विद्यार्थी ज्ञान का अध्ययन क्यों करता है ? यह बड़ा बड़ा सवाल है। सच कहें, तोता उड़ने और घड़ भी भाग रूप (विद्या ध्यान में) बन जाता है। उड़ना और जबरदस्ती से पड़ना—ये सब कार्य मानसिक शक्ति पैदा कर विद्या के ज्ञान अर्पण पैदा करते हैं। क्या बच्चों में ज्ञान के प्रति भूत पैदा करना परमावश्यक है। जब तक बच्चा जन्म होता है, तबना ही बुद्धिमानप्राप्ति और समझदारी बन जाता है। यही ज्ञान अर्पण भी है। जिसके अर्थों में जाना है। उन दिनों का। प होना अत्यवश्यक है। समझना निश्चित तथ्य की प्राप्ति में अटलता है। हमने सही मार्ग ज्ञान करना मुश्किल ही है। विद्या में सही नि में निष्ठा का प्रयोग करना जाना है, यही विद्यार्थी कहता है। तब ही भूत का पाठ यदि विद्या में सही, तो वह सही अर्थ में प्राप्ति है और उभरा पड़ना ही मायका है।

[illegible]

— १० ॥ श्रीरक्षा है, उसे ज्ञान में प्रकट करना है । विगमिता नर
रक्षा में माना श्रीरक्षा स्वयं करने का उत्तर है ।
॥ १० ॥ श्रीरक्षा अपने विज्ञानों-जीवन की मही दिना है । उत्तर
है । स्वयं विदु है ।

जमीर में पुण्यायं कर उपनिषदों प्राप्त करें, यद्यपि उन्हें भी
 उन्हें भी जीवनान में प्राप्ति सम्भव हो, माया में मुक्त हो, समस्त
 प्राये—यह ज्ञान जागीरिद्वय श्रम की है। यद्यपि में जागीरिद्वय श्रम
 मानसिक श्रम दोनों सात्विक और सामाजिक प्रियान में समान
 योगी हो है। इमीनिष्ठ विद्याएँ भी दोनों की मान्य है। जागीरिद्वय
 श्रम में यद्यपि, यद्यपि, श्रम और प्रयत्न दृष्टि कर मन्ता है।
 उन दोनों मन्ता के मन्ता है। वेदिक प्राय विद्वान् श्रमयोगी नहीं
 हैं। ज्ञान मानस पुण्यायं मन्ता जाता है। जागीरिद्वय श्रम
 ज्ञान सात्विक विद्वान् नहीं कर मन्ता है, वेदिक पूरा पुण्यायं कर है,
 जागीरिद्वय और सात्विक ज्ञानियों का पत्र होता है।

[illegible]

ब्रह्मचर्य ही वा प्रस्थिता वेन्द्र, मय मे ५ अंग होने है । पचाह्न उपा
 — छोटा मन्त्रादि है, वर्तन वा शाय प्रदम्भजानी होता है, मन्त्र होता
 होर मन्त्रादीय अन्तरा है । पचाह्न का पूर्ण योग ही सिद्धि का
 कारण है । पचाह्न पूर्ण स्थितिकर होता है । पचाह्न का पूर्ण का
 समय की पूर्णता है ।

पचाह्न इस प्रकार है — (१) साधारण (२) आचार्य
) मन्त्रादीय अन्तरा (४) विद्याधी छोटा (५) मन्त्रादि

साधारण — निष्ठावर्ग का मन्त्रादि, प्रसाद मन्त्र होता है । उन्नी
 निष्ठावर्ग में साधारण मन्त्रादि का मन्त्रादि होता है । उन्नी के अनु-
 पन्न निष्ठा उन्नी छोटा पाठान्तम निर्धारित मन्त्रादि होता है । अन्तरा
 ही होती है । उन्नी की ही छोटा अनुपन्न छोटा अन्तरा मन्त्रादि
 मन्त्रादि होता है, जिसे छोटा वा मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि में पूर्णता
 है । आचार्य अन्तरा अनुपन्न के आचार्य मन्त्रादि की ही मन्त्रादि
 मन्त्रादि करता छोटा मन्त्रादि मन्त्रादि है, अन्तरा अन्तरा अनुपन्न
 है । अन्तरा के ही निर्धारित निष्ठा मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि, मन्त्रादि मन्त्रादि होता है ।

अन्तरादि मन्त्रादि मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि होता है
 मन्त्रादि मन्त्रादि के मन्त्रादि मन्त्रादि होता है । अन्तरा मन्त्रादि का मन्त्रादि
 मन्त्रादि है । अन्तरा मन्त्रादि मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि
 होता है अन्तरा मन्त्रादि मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि की ही मन्त्रादि मन्त्रादि है छोटा मन्त्रादि मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि का मन्त्रादि है । अन्तरा मन्त्रादि का मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि मन्त्रादि होता है । अन्तरा मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि मन्त्रादि होता है । अन्तरा मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि

अन्तरादि मन्त्रादि — अन्तरादि मन्त्रादि, मन्त्रादि, मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि
 मन्त्रादि मन्त्रादि होता है । अन्तरादि मन्त्रादि, मन्त्रादि मन्त्रादि मन्त्रादि, मन्त्रादि

आत्मकी नम दाय ही कर मरना है । आज के विद्यार्थी भला धीरे
उन्को की स्थापिति के घन जन जाने है । यही कारण है कि पाँच
सम्भाषो भ स्याद्वे और दमे होने गये है । आज मुद्र लिख का द्वेष
नाता मष्ट प्राप्त है । गुण अपनी खुटी पूरी करता है , विद्यार्थी
ही राजगी नरा देया है । दोनों में आत्मी स्वर, मान-मर्त्य और
निदानों की सुनि नहीं रही है । गुणभाव विद्यार्थी के दूर हो गये है
। निज भाव मुद्र मे दूर हो गये है । इसीलिए आज की शिक्षा मानव
म के लिए प्रतिफलक है । विद्यार्थी को योग्य पत्र शिक्षा प्रदान
। सामान्यमान होना आवश्यक है । अपनी रचित व अनुसार विचार में
कावे वा अधिका भी होना आवश्यक है । गुण अपने गुणगुण के
। आज की विद्यार्थी प्रामाण्या है तथा गहनतम शक्तियों व चरित्र
वही पड़े, जो परमात्मिक है । विद्यार्थी के लिए ही शिक्षा है ।
२१ शिक्षा कर की हर प्रशस्ति में विद्यार्थी की समस्तता ही साध
है , इसमें उनकी और विकासशील प्रविष्टा है ।

[illegible]

१. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 २. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ३. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ४. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ५. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ६. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ७. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ८. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 ९. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।
 १०. यह कार्य केवल ही होकर उसके दायरे में नहीं आता।

१. एका अर्थाने एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 २. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ३. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ४. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ५. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ६. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ७. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ८. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 ९. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)
 १०. एकाच ठिकाणी एकाच वेळी एकाच प्रकारचा प्रयोग करून घ्यावा. (१)

[The page contains dense handwritten text in Devanagari script, which is mostly illegible due to extreme blurring and low contrast.]

१. श्रीगुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

(२) हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

(३) हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

(४) हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

(५) हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

(६) हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है । इसका अर्थ है कि हमें अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है ।

2. 1994 年 12 月 1 日，原告与被告签订了《合作经营合同》，约定由被告提供资金，原告提供技术，共同经营“某某”项目。

[illegible][illegible]

한국의 경제는 지난 몇 년 동안 급속도로 발전해 왔으며, 특히 수출 부문에서 두드러진 성장을 보였습니다. 이는 정부의 적극적인 정책과 기업들의 노력이 있었기에 가능한 일입니다. 그러나 여전히 많은 과제가 남아 있으며, 이를 해결하기 위한 노력이 필요합니다.

첫째, 기술 혁신을 촉진해야 합니다. 첨단 기술을 개발하고 이를 산업에 적용하는 것은 경쟁력을 높이는 데 필수적입니다. 둘째, 인력 양성에 중점을 두어야 합니다. 고숙련 인재를 양성하는 것은 경제 성장의 동력이 됩니다. 셋째, 중소기업 지원이 중요합니다. 중소기업은 고용 창출에 크게 기여하며, 경제의 다양성을 높이는 데 도움이 됩니다.

이러한 과제들을 해결하기 위해서는 정부, 기업, 학계 간의 긴밀한 협력이 필요합니다. 또한, 국제 사회와의 협력도 중요합니다. 글로벌 시장에서의 경쟁력을 높이기 위해서는 세계적인 흐름에 발맞추는 노력이 필요합니다.

한국의 경제는 이제 새로운 도약을 준비하고 있습니다. 과거의 성공을 바탕으로, 더 나은 미래를 만들기 위한 계획을 세우고 있습니다. 특히, 디지털 전환을 가속화하고, 친환경 경제를 구축하는 데 중점을 둘 것입니다.

정부에서는 규제 개혁을 추진하여 기업의 부담을 줄이고, 혁신을 장려할 것입니다. 또한, 교육 시스템을 개선하여 미래 인재에 대비할 것입니다. 기업들은 R&D 투자를 늘리고, 해외 시장 개척에 힘쓰고 있습니다. 학계에서는 기초 연구를 강화하여 기술 혁신의 토대를 마련하고 있습니다.

이러한 노력들이 결실을 맺을 때, 한국은 더욱 강하고 번영하는 국가가 될 것입니다. 국민들의 적극적인 참여와 협력이 성공의 열쇠입니다. 함께 노력하여, 밝은 미래를 만들어 나갑시다.

[illegible]

1998

10월 1일
 1. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 2. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 3. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 4. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 5. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 6. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 7. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 8. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 9. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의
 10. 10월 1일(수)은 한글날이다. 이날은 우리 민족의

2. 1945년 8월 15일 일본 제국 패망 후, 한반도는 미·소 양국의 군정하에 놓이게 되었다. 이 시기에 한반도의 분할 점령이 이루어졌으며, 이는 훗날 남북 분리의 원인이 되었다. 1948년 8월 15일, 남한은 대한민국으로, 북한은 조선민주주의인민공화국으로 각각 건국되었다.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

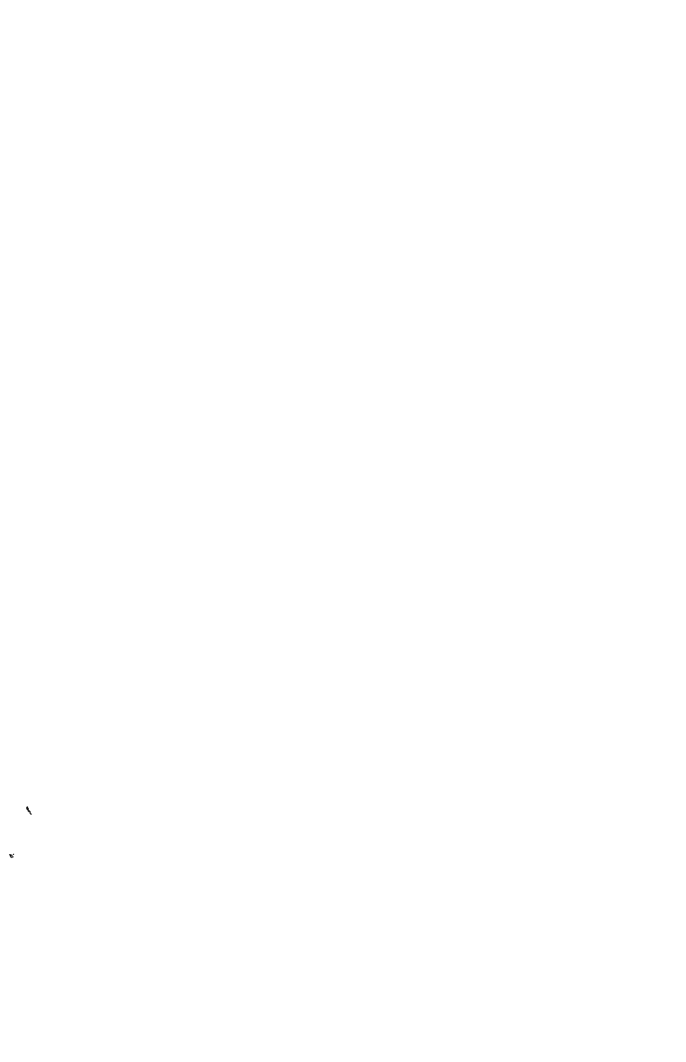
한국의 전통 문화는 오랜 역사를 통해 형성된 독특한 가치를 지니고 있다. 특히, 유교 문화의 영향으로 중추를 이루고 있다. 그러나 현대 사회의 급속한 변화 속에서 전통 문화는 점차 사라져가고 있다. 이에 따라 많은 사람들이 전통 문화의 중요성을 인식하고, 이를 보존하고 계승하려는 노력을 하고 있다. 특히, 전통 예술 분야에서는 다양한 프로그램과 전시회를 통해 대중에게 알리고 있다. 또한, 전통 공예 분야에서는 젊은이들이 참여하는 프로그램을 통해 전통 기술을 전수하고 있다. 이러한 노력은 전통 문화의 가치를 지키고, 미래 세대에 전달하는 데 크게 공헌하고 있다.

한국의 전통 문화는 오랜 역사를 통해 형성된 독특한 가치를 지니고 있다. 특히, 유교 문화의 영향으로 중추를 이루고 있다. 그러나 현대 사회의 급속한 변화 속에서 전통 문화는 점차 사라져가고 있다. 이에 따라 많은 사람들이 전통 문화의 중요성을 인식하고, 이를 보존하고 계승하려는 노력을 하고 있다. 특히, 전통 예술 분야에서는 다양한 프로그램과 전시회를 통해 대중에게 알리고 있다. 또한, 전통 공예 분야에서는 젊은이들이 참여하는 프로그램을 통해 전통 기술을 전수하고 있다. 이러한 노력은 전통 문화의 가치를 지키고, 미래 세대에 전달하는 데 크게 공헌하고 있다.

한국의 전통 문화는 오랜 역사를 통해 형성된 독특한 가치를 지니고 있다. 특히, 유교 문화의 영향으로 중추를 이루고 있다. 그러나 현대 사회의 급속한 변화 속에서 전통 문화는 점차 사라져가고 있다. 이에 따라 많은 사람들이 전통 문화의 중요성을 인식하고, 이를 보존하고 계승하려는 노력을 하고 있다. 특히, 전통 예술 분야에서는 다양한 프로그램과 전시회를 통해 대중에게 알리고 있다. 또한, 전통 공예 분야에서는 젊은이들이 참여하는 프로그램을 통해 전통 기술을 전수하고 있다. 이러한 노력은 전통 문화의 가치를 지키고, 미래 세대에 전달하는 데 크게 공헌하고 있다.

전통문화

한국의 전통 문화는 오랜 역사를 통해 형성된 독특한 가치를 지니고 있다. 특히, 유교 문화의 영향으로 중추를 이루고 있다. 그러나 현대 사회의 급속한 변화 속에서 전통 문화는 점차 사라져가고 있다. 이에 따라 많은 사람들이 전통 문화의 중요성을 인식하고, 이를 보존하고 계승하려는 노력을 하고 있다. 특히, 전통 예술 분야에서는 다양한 프로그램과 전시회를 통해 대중에게 알리고 있다. 또한, 전통 공예 분야에서는 젊은이들이 참여하는 프로그램을 통해 전통 기술을 전수하고 있다. 이러한 노력은 전통 문화의 가치를 지키고, 미래 세대에 전달하는 데 크게 공헌하고 있다.





की बात करते हैं। सबसे महान् धर्म तो अपरिग्रह है। अपरिग्रह का मूल अनासक्ति है और उन्नी में से सारे धर्म निकलते हैं।”

धर्माचार्य ने सबकी बातें सुनी। उन्होंने कहा—“वन्धुघो ! मत्प, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य की अपनी-अपनी महिमा है, लेकिन सबसे बड़ा धर्म तो “आचरण” है।

लेखक ने पुस्तक में बहुत-सी उद्बोधक बातें कही हैं। पुस्तक सात्विक है और सुपाठ्य है। पढ़कर लगता है, कुछ पाया, ममय व्यय नहीं गया।

पुस्तक के लेख “कला कला के लिए है,” इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, बल्कि बार-बार कहते हैं कि “कला जीवन के लिए है।” पुस्तक में पाठक कला योजने, तो निराश होंगे। लेखक कवि नहीं हैं, जो प्रायः गगन-विहारी होते हैं। वह व्यावहारिक है और पाठको को शुद्ध व्यवहार की भूमिका पर राई करने के आकांक्षी हैं। किसी-किसी लेख में उनका उपदेशक का स्वर उभर आया है, पर उस स्वर के पीछे भी उनकी यही कामना दीग पड़ती है कि मनुष्य, समाज और राष्ट्र शुद्ध बनें, प्रबुद्ध बनें।

पुस्तक के छठे लेख के नाम पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। उन लेख में उन्होंने धर्म और सम्प्रदाय के बीच के अन्तर को स्पष्ट किया है। वह कहते हैं,—“जब धर्म पथ और सम्प्रदाय के रूप में उभर कर आता है, तब वह मानव-समाज के लिए विनाशकारी बन जाता है। जितने भी धर्म और सम्प्रदाय हैं, उनके प्रवर्तक आचार्य और भक्त लोग स्वत्व में प्रेम करने वाले होते हैं और परायों से घृणा करते हैं। ऐसे सम्प्रदाय और पथ धर्म नहीं कहे जा सकते।”

पुस्तक की मूल भावना अच्छी है। सामान्य पाठको के लिए उसमें बहुत कुछ पढ़ने और ग्रहण करने योग्य है। कुल मिला कर

विद्वानों एवं समाजसेवियों की दृष्टि में

[१]

श्री 'उदय' जैन एक शिक्षाशास्त्री कर्मठ व्यक्ति हैं । जैन समाज की उन्नति कैसे हो ? इसकी निरन्तर चिन्ता करते हैं । उनी चिन्ता में से श्री जैन शिक्षण सघ की स्थापना निष्पन्न हुई जहा इनकी क्रियाशक्ति सफन हो रही है और दूमरा कार्य है जो उन्होंने समय-ममय पर अपने विचार लेखों द्वारा जैन पत्रों में और अन्यत्र व्यक्त किये । इस दूमरे कार्य की निष्पत्ति "साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो" यह लेख संग्रह है । इसमें श्री उदयजी द्वारा ई० सन् १९३१ से आज तक लिखित लेखों में से चुन कर कुछ लेखों का संग्रह किया गया है । यह तो सम्भव नहीं कि आज से ४५ वर्ष पूर्व लिखे गये लेखों और हाल में लिखे गये लेखों का स्तर समान हो, किन्तु एक बात निश्चित है कि समाज में परिवर्तन लाने की भावना जो उनके विद्यार्थी जीवन में लिखे गये लेख में है, वही भावना उत्तरोत्तर बलवती बनती गई है और समाज के लिए कुछ कर जाने की भावना सक्रिय हुई । उन्होंने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना शुरू की, यह एक समाज-परिवर्तन का उत्तम मार्ग है जो उन्होंने अपनाया ।

विषयों में धर्म और दर्शन-खासकर जैन धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में कई लेख हैं और शिक्षण के विषय में भी उनके उस क्षेत्र के अनुभव के आधार पर लिखे गये लेख हैं । जैन समाज की तत्काल में उपस्थित होने वाली समस्याएँ जैसे कि सम्प्रदायों की एकता, सम्बत्सरी एकता, महावीर निर्वाण उत्सव इत्यादि के विषय में भी उनकी सुलझी हुई बुद्धि शक्ति के द्वारा उन्होंने मार्ग-दर्शन दिया है ।